वेदान्त आश्रम की मासिक ई - पत्रिका
वेदान्त पीयूष
वर्ष २२
जुलाई - २०२२
प्रकाशन - ०७

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

जुलाई २०२२

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्य मध्यमाम्

अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

जुलाई 2022

पंचीकृतमहाभूत
सम्भवं कर्मसंचितम्।
शरीरं सुखदुःखानां
भोगायतनमुच्यते।।
(आत्मबोध श्लोक : 12)

पूर्वकर्मों द्वारा निश्चित तथा पंचीकृत महाभूतों से निर्मित हुआ यह स्थूल शरीर सुख दुःख के अनुभवों का साधन अथवा भोग का आयतन कहा जाता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

तीर्थयात्रा

हरि ॐ। तीर्थयात्रा एक अनूठा पेकेज है। पुराने समय में तीर्थयात्राएं अत्यन्त कठ़िन, दुर्गम स्थानों में हुआ करती थी; इसलिए ऐसी यात्रा पर जाने के लिए एक बहुत ही दृढ़ संकल्प, ईश्वर में दृढ़ भक्ति और विश्वास की आवश्यकता होती थी। किन्तु आज के समय में उसमें अत्यन्त परिवर्तन हो गया है। आज धार्मिकयात्रा की परिकल्पना में पहले के उद्‌देश्यों में विकृति है, लोगों की आवश्यकताएं, सुख–सुविधा को ही ध्यान में रखा जाता है। प्रारम्भ में 'तीर्थस्थान' मात्र एक साधन था, जिसमें 'यात्रा' का महत्व अधिक था, यद्यपि जब इस यात्रा को धार्मिक यात्रा में बदल दिया जाता है, तो यात्रा का स्थान भी महत्वपूर्ण हो जाता है। इस वजह

तीर्थयात्रा

से यात्रा को भी संक्षिप्त, सुविधाजनक और विश्रामदायी बना दिया जाता है। इसके अनेकों लाभ भी होते हैं कि यात्रियों की संख्या में अधिकता होने से पूजास्थलों को सुविधाजनक और संसाधनपूर्ण बनाया जाता है। इससे वहां के पूजारी, पण्डित आदि को आजीविका और जीवननिर्वाह के उचित स्रोत भी प्राप्त होते है। किन्तु इस प्रक्रिया में यात्रा का मूल प्रयोजन और उसके मूल उद्देश्य लुप्त से हो जाते है।

> 'यात्रा को तीर्थयात्रा बनाने के लिए दृढ़ संकल्प, ईश्वर के प्रति श्रद्धा और भक्ति होना अनिवार्य है।'

ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा की यात्रा में अनिवार्यता:–

हमारे पूर्वजों और संन्तों ने तीर्थस्थानों को पहाड़ों या घने, भयावह जंगलों के मध्य में क्यों बनाया था, यह विचार योग्य है। ऐसे स्थान पर जाने के लिए

तीर्थयात्रा

भी भगवान के चरणों में भक्ति, श्रद्धा, विशेष आत्मबल व साहस की आवश्यकता होती है। इसके अलावा अपने घरादि की सुविधाओं के प्रति अनासक्ति होना, समस्त परिवार तथा कार्य की कर्तव्यता से स्वयं मुक्त होकर परिवार के अन्य सदस्यों को जिम्मेदारी सोंपना, तथा न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ एक साधारण जीवन जीने की क्षमता होना - इन सब गुण की आवश्यकता होती है। तीर्थस्थान जंगलों व उंचे पहाड़ों जैसे दुर्गम स्थानों पर होने से तीर्थयात्रियों के पास वहां के स्थानीय निवासियों की तरह सरल तरीके से रहने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। इस तरह तीथयात्रियों को बाह्य चीजों पर निर्भरता से मुक्त करके, जीवन को सरल बनाया जाना प्रयोजन था, तब ही बहिर्मुखता समाप्त होकर वास्तविक अन्तर्यात्रा आरम्भ हो सकती है। इसके अलावा ऐसी यात्रा जो मूलभूत सुख-सुविधाओं और सुरक्षाओं से भी रहित है, वहां ईश्वर में एक मात्र विश्वास ही विकल्प

रह जाता है। इस प्रकार यात्रा जीवन को सरल तरीके से जीने के लिए सहायक होता था, साथ ही ईश्वर के चरणों में दृढ़, गहरी भक्ति के साथ अन्तर्मुखता की यात्रा करवाने में हेतु बनती थी। इसके बाद ऐसे व्यक्ति को कोई भय या निर्भरता नहीं रह जाती, ऐसा व्यक्ति उसके बाद किस तरह का जीवन व्यतीत करेगा – उसकी कल्पना की जा सकती है। यह अपने आपमें एक बड़ा वरदान सिद्ध होगा।

तीर्थ में वास्तविक सत्संग प्राप्त कर सकते हैं– तीर्थों में सदैव धर्मशास्त्र, वेदान्त, योग, ध्यान और भक्ति के गहन ज्ञान से युक्त बुद्धिमान पुरुष, सन्त और ज्ञानीजन वास करते थे। किसी को भी जीवन में आगे की यात्रा के लिए मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए यह एक आदर्श स्थान होता था। ऐसे स्थानों में कोई भीड़-भाड़ नहीं हो सकती है, इसलिए जो भी मार्गदर्शन प्राप्त होता था, वह व्यक्तिगत होता था। जो साधारणतः

तीर्थयात्रा

शहरों में सामूहिक रूप से कथा एवं ज्ञानयज्ञ के माध्यम से प्राप्त होने वाले ज्ञान से अत्यन्त विलक्षण हो सकता है। सामान्य जनता को सामूहिक रूप से प्रदान किया गया ज्ञान बहुत सामान्य ही होता है। उसमें कोई विशिष्टता नहीं होने से हमारी विशिष्ट, व्यक्तिगत समस्या के समाधान और मार्गदर्शन में सहायक नहीं हो सकता है। एक कथाकार अधिक से अधिक जनता को एकत्रित करने में अधिक रुचि रखता

'यात्रा में तीन चीजों के समावेश से वह तीर्थयात्रा बन जाती है। वह है - यज्ञ, दान और तप।'

है, अतः वह सूक्ष्म विवरणों के बजाय सांसारिक चीजों से प्रेरित होता है। किन्तु ऐसा विलक्षण व विशिष्ट ज्ञान जो वास्तविक रूप से पूरी तरह संन्यस्त, विरक्त और बुद्धिमान हो वही दे सकता हैं। हमारे समस्त शास्त्र व्यक्तिगत रूप से गुरु-शिष्य के संवादरूप में ही प्राप्त होते है,

तीर्थयात्रा

जो गुरु व आचार्य स्वयं उसे जीते हैं। तीर्थों में हमें ऐसे महान लोगों से मिलने का अवसर प्राप्त होता है और इस प्रकार हमारे आगे की अध्यात्मयात्रा को प्रशस्त करने में मार्गदर्शन मिलता है।

किसी भी यात्रा में तीन चीजों का समावेश होने से वह यात्रा तीर्थयात्रा बन जाती है। वह है – यज्ञ, दान और तप। भगवान ने गीता में कहा हैं कि, यज्ञ दान तपः कर्म पावनानि मनीषिणाम्। अर्थात् यज्ञ, दान और तप मनुष्य को पावन करते हैं।

यज्ञ ऐसी जीने की कला है कि जिसमें कर्म के पीछे अहं की संतुष्टि की प्रेरणा नहीं है, किन्तु बुद्धिमानों की सेवा करना और इस प्रकार उनके आशीर्वाद प्राप्त करना है। जगत में अधिकंश कर्म सिर्फ मैं और मेरे के लिए किए जाते हैं। किन्तु यज्ञभाव उस प्रेरणा को निस्वार्थता में

बदल देता है और जो कि प्रबुद्ध और गुरुजनों की प्रसन्नता के लिए होता है। इस भावना का समावेश सब से महत्वपूर्ण होता है।

2. दान से उदारता का समावेश होता है।

दान जीवन का एक और तरीका है, जो हमारी संकुचित मानसिकता को बदल देता है। एक अज्ञानी व्यक्ति में साधारणतः यह विश्वास होता है कि अधिक सुख-सुरक्षा प्राप्त करने के लिए हमें अधिक धन आदि के संग्रह की आवश्यकता है, किन्तु यहां दान में संदेश अत्यन्त विलक्षण मिलता है। जब आप अधिक देते हैं तब आपको अधिक प्राप्त होता है। देने में हमारी क्षूद्र मानसिकता को बदलने का अधिक महत्व है, केवल धन आदि देने के बारे में नहीं है। हमारे पास जो भी अधिक मात्रा में है उससे अन्य की सहायता कर सकते हैं, चाहे कुछ मार्गदर्शन, ज्ञान, भोजन या अपना समय अथवा दो प्रेम के शब्दमात्र

भी हो सकते है। ऐसा करके हम अपनी दुनिया का विस्तार करते हैं और सभी को अपना बनाते हैं। अन्यथा मनुष्य एक छोटी सी दुनिया में ही रहता है। यह उदारता का जीवन में समावेश करने का हेतु बन जाता है।

तपस् – प्रेय से श्रेय की यात्रा होना।

तपस् का अर्थ है कि हम अपनी पसंद–नापसंद के अनुरूप जीने के बजाय जो उचित है, उसके अनुरूप जीएं। यह हमारे पूरे दृष्टिकोण को परिवर्तित कर देता है और हमें श्रेयमार्ग पर चलने में सहायक बनता हैं। यदि हम अपने सत्य में जगना चाहते हैं और जीवन में ईश्वर को पाना चाहते हैं तो जीवन में यह परिवर्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह हमारे मन में आत्मबल में वृद्धि करता हैं, बाह्य पराधीनताओं से मुक्त करता है तथा हमें हमारे पास अर्थात् अन्तर्मुख और सूक्ष्म होने में सहायक बनता है।

तीर्थयात्रा के पश्चात् क्या?

एवं तीर्थयात्रा एक बहुत ही पवित्र, शुद्धिकरण और परिवर्तन की यात्रा है। यह उसके लिए

अत्यन्त आवश्यक है जिसे अभी चित्तशुद्धि की अपेक्षा है। इस तरह से मन के धन्य होने के बाद, चाहे हमारी यात्रासूचि मे अन्य स्थान कितना भी महत्वपूर्ण हो, किन्तु अब उसकी अनावश्यकता हो गई। उसके उपरान्त अब गुरु के श्रीचरणों में बैठ़कर एक विशेष अन्तर्यात्रा करनी है। वह है – आत्मतीर्थ। जिसे गुरु के श्रीचरणों में बैठकर वेदान्त के ज्ञान से ही सिद्ध किया जा सकता है। बाहरी तीर्थयात्रा को हमने यदि सही ढंग से किया तो वही हमारी अन्तर्यात्रा को प्रशस्त करने में सहायक होता है। अन्ततः यह यात्रा हमें अकेले, और स्वयं ही करनी ह। इसी यात्रा हेतु अन्य समस्त यात्रा तैयारी रूपा है।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

ईश्वर सिद्धि

ईश्वर की सिद्धि एक अध्यात्मयात्रा है। यही मुक्ति की यात्रा है। इसके मुख्य तीन पड़ाव होते है। सर्व प्रथम ईश्वर की महिमा देखना। ईश्वर ही इस जगत के उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्ता हैं। उन्होंने दिव्य, अलौकिक जगत बनाया हैं। जिसमें सुन्दर व्यवस्था, संवादिता विराजमान है। यह अपने आपमें सम्पूर्ण है। उसमें न कुछ न्यून है और न ही अधिक। अतः इस पूरी हार्मनि में से किसी एक भी वस्तु को हटा दिया जाए तो सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है। प्रत्येक वस्तु अन्योन्य सम्बद्ध तथा अपने आपमें निराली है। किसी एक वस्तु को समझने के लिए सम्पूर्ण जीवन भी कम पड़ जाता है। जितनी भी गहराई में प्रवेश करें, उतना ही ज्ञान सूक्ष्म और व्यापक होता जाता है। वह यही एहसास दिलाता है कि हम कितना अल्प जानते हैं। न केवल सृष्टि

ईश्वर सिद्धि

की उत्पत्ति किन्तु विनाश, विसर्जन भी अत्यन्त अलौकिक, ऐश्वर्यमय तरीके से होता है। उनके विनाश में भी सृजन निहित होता है। जगत की व्यवस्था, सुन्दरता, संवादिता आदि देखकर उसके पीछे किसी महान, अनन्त-अनन्त ज्ञान की निधि, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ के होने का निश्चय होता है।

सुन्दर कलाकृतिरूप इन सृष्टि को देखकर ईश्वर की महिमा ज्ञात होकर शरणागति होती है।

वे जो भी है, परं ऐश्वर्यमय, महान्, करुणानिधान ईश्वर ही है। सृष्टि की सुन्दरता को देखने तथा उसके पीछे विराजमान सृष्टा-ईश्वर के निश्चय हेतु जगत को आंख खोलकर, बगैर प्रयोजन व स्वार्थ की गणित से, भूत-भविष्य की चिन्ता से मुक्त होकर, वर्तमान में पूर्ण उपलब्धता से देखना चाहिए। ऐसे ईश्वर की महिमा देखने से निःशब्द होने लगते है। अपनी अल्पता का एहसास होने पर शरणागति होने लगती है। वह मन में हल्कापन लाती है। हम अकेले नहीं रह जाते है। ऐसे ईश्वर का साथ सर्वज्ञ का साथ है, उनकी महिमा देखकर महानता का निश्चय करके उनमें सतत रम

ईश्वर सिद्धि

पाएं। उनसे प्रत्येक कर्म, विचार आदि के माध्यम से जुड़े रहें। उससे और महानता दीखती जाती है तथा उनके विषय में जिज्ञासा होने लगती है।

जिज्ञासा का उदय एक अज्ञान की विनम्रता से युक्त शिष्य बनाता है। ईश्वरकृपा से ही किसी ज्ञानवान गुरु की शरण प्राप्त होती है। उनके माध्यम से यह ज्ञान होता है कि जिन ईश्वर को जानते हैं, वे हमारे हृदय में ही है। हम धन्य होकर जीने लगते हैं। भगवान को और गहराई से जानने हेतु ईश्वर के वचन ही प्रमाण है। वे ही बताते हैं कि, ममैवांशो जीव लोके जीवभूत: सनातन:। इस जीवलोक में जीव रूप से हमारा ही अंश है, हम उनके अंशी हैं। यह जानने पर जीव महान व दिव्य बन जाता है। साथ ही सब के हृदय में दिव्य जीव होने से स्वकेन्द्रिता से परकेन्द्रित होने लगते है। यह आगे के पड़ाव पर ले जाता है।

यह इस यात्रा का दूसरा पड़ाव है कि जिन सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर को सृष्टि और स्वयं को सृष्टि समझकर जीते थे, वे हमारे

ईश्वर सिद्धि

हृदय में जीव की तरह से विराजमान हैं। एवं वे अंशी व हम अंश है। वे अंशी होने से हम उनके दूत बनकर जीते हैं। यह सोच ही मन में धन्यता लाता है। अपने संकुचित जीव होने में समस्या नहीं किन्तु इससे जीव की दिव्यता दीखती है और धन्यता की अनुभूति होती है। इस ज्ञान से मैं के बारे में अनेकानेक चिन्ताएं, मैं का छोटापन, भय, घूटन आदि रूप समस्याओं की समाप्ति होने लगती है। व्यक्तितत्व निर्भीक होने लगता है। जीवन दिव्य होने लगता है। मैं के बारे में अंश होने का ज्ञान से ही दिव्यता व पूर्ण दीखने लगता है। यह मानो सूर्योदय के पूर्व की अरुण की लालिमा है। इस यात्रा में धर्म और अध्यात्म का समन्वय है, जहां जीवभाव समस्या नहीं है।

'सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान ईश्वर स्वयं हमारे हृदय में विराजमान हैं।'

उसके उपरान्त अब जिज्ञासा के अन्तिम पड़ाव पर पहुंचते है कि, जिसके हम अंश है, वे वस्तुत: कौन और कैसे है? वे अंशी है तो उनसे इतनी भी दूरी क्यों है? एवं एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव में जाने में जिज्ञासा का ही योगदान है।

ईश्वर सिद्धि

इस अन्तिम पड़ाव में ईश्वर से तत्त्वत: एकता होती है। यहां गुरु और वेदान्त शास्त्र का आश्रय लेकर अपने उपर विचार किया जाता है। जहां यह जानते हैं कि हमारा छोटापन अज्ञानवशात् किए अध्यास की वजह से है। ज्ञान के प्रकाश में हमारा छोटापन समाप्त होना चाहिए। जिसमें ज्ञान तो जीव प्राप्त करता है, किन्तु इस ज्ञान के प्रतिफलरूप जीवभाव की ही समाप्ति हो जाती है। जिस प्रकार समुद्र में ओला पिघल जाता है, उसके उपरान्त ओला का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता है। वैसे ही हम अंश नहीं रहते हुए अंशीरूप हो जाते है, जहां जीवभाव की समाप्ति हो जाती है। जीव का पृथक् व स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है–यह दीख जाता है। ईश्वर से एक हो जाने पर जिसका भजनादि करते थे, मानों उन ईश्वरत्व की ही प्राप्ति हो जाती है। जहां अब व्यष्टि भी हम है, समष्टि भी हम है। यही ईश्वरत्व की सिद्धि का स्वरूप है।

लघु वाक्यवृत्ति

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

रूपादौ गुणदोषादि
विकल्पा बुद्धिगाः क्रियाः।
ताः क्रिया विषयैः सार्धं
भासयन्ती चितिर्मता।।

रूपादि में गुण-दोषादि के विकल्पों की कल्पना बुद्धि के द्वारा ही होती हैं। रूपादि विषयो के साथ बुद्धि के इन समस्त व्यवहार को शुद्ध चेतनता ही प्रकाशित करती रहती हैं।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि अग्नि के संयोग से गरम हुआ जल शरीर को जलाने में सक्षम हो जाता है, वैसे ही चेतन तत्व से प्रकाशित हुई बुद्धि भी सब वृत्तियों को प्रकाशित करने में सक्षम हो जाती है।

'चेतनतत्त्व से जीवन्त हुई बुद्धि ही शरीरादि संघात को जीवन्त करती है।'

बुद्धि के द्वारा प्राण–इन्द्रियादि रूप पंचमहाभूत का संघात जीवन्त होकर अपने अपने विषयों को प्रकाशित करता हैं तथा क्रियावान होकर अपना अपना कार्य करते हैं। शब्दादि पांच विषय भी उसी चेतनवान बुद्धि के द्वारा जीवन्त हुई इन्द्रियों के द्वारा ही प्रकाशित होते है।

लघु वाक्यवृत्ति

यह विविध शब्दादिमय पंचमहाभूत की सृष्टि ईश्वर के द्वारा रचित ईश्वरसृष्टि है। अत: अपने आपमें बहुत ही सुन्दर, दिव्य और निर्दोष है। सृष्टि की सुन्दरता, सुव्यवस्था, उपयोगिता और उसमें विद्यमान संवादिता से ईश्वर की महानता, उनकी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, उदारता, करुणादि द्योतित होते है। एवं सृष्टि अपने आपमें आशीर्वादरूपा है। तथापि अपने अन्दर संसार के सन्ताप का अनुभव करके सतत सन्तप्त होते है। अत: प्रश्न होता है कि उसके पीछे क्या कारण है?

इसका समाधान आचार्य इस श्लोक में करते हैं। जो चेतना बुद्धि में प्रतिबिम्बित होती है, वह चिदाभास से अहंकार का जन्म होता है और अन्त:करण वृत्ति आदि से युक्त होकर जीव बनता है। जीव अपने अज्ञान के कारण अर्थात् अपनी वास्तविकता को नहीं जानने के कारण जीवभाव से युक्त होता है और जीव को ही अपना सत्य मानने लगता है। अर्थात् जीव की संकुचिता आदि से

युक्त होता है। इसके उपरान्त उसमें स्वाभाविक ही उन संकुचिता को दूर करने की प्रेरणा अर्थात् भोक्तापन से युक्त होता है। अज्ञान के कारण न केवल अपने बारे में विपरीत कल्पना करता है किन्तु दृश्य के सन्दर्भ में भी कल्पना होती है।

शब्दादि विविध विषयों को सत्य मानकर उसमें संकुचिता दूर करने के सामर्थ्य का आरोपण करता है और उसके प्रति महत्वबुद्धि से युक्त होता है। महत्वबुद्धि के अनुपात्त में उससे सुख और दुःख को प्राप्त करता है। इस प्रकार अपने आपमें आशीर्वादरूपा ऐसी सुन्दर, अद्भुत, दिव्य सृष्टि में गुण और दोष की कल्पना करता है। जो अनुकुलता व सुख का हेतु बनता है; उसमें अच्छाई अर्थात् गुण का, तथा जो प्रतिकुलता व दुःख का हेतु बनता है; उसमें बुराई अर्थात् दोष का आरोपण करता है। इस प्रकार उसमें सुख-दुःख देने के सामर्थ्य की, तथा गुण-दोष की कल्पना बुद्धि ने ही अज्ञानवश की हुई है। बुद्धि के द्वारा अज्ञानवश की गई कल्पना ही संसरण का हेतु बनती है।

बुन्द समाया समन्दर में जानत है हर कोई।
समन्दर समाया बुन्द में जानत वीरला कोई।

गीता अध्याय : 17

श्रद्धात्रय विभाग योग

श्रद्धात्रय विभाग योग

गीता के 17 वें अध्याय का नाम श्रद्धात्रय विभागयोग है। पूर्व अध्याय में भगवान ने दैवी और आसुरी गुण सम्बन्धी चर्चा की थी। जीवन अपेक्षावान, स्वकेन्द्रित होने पर ज्ञान लाभान्वित नहीं करता और जीवन में आमूल परिवर्तन नहीं हो पाता। उसके लिए मूल्यों में समझोता भी करते है। किन्तु जब लक्ष्य प्रेरित करता है, तो क्या प्राप्त हुआ उसका महत्व खतम होकर जो भी परिस्थिति प्राप्त होती है, उसीमें धन्यता होती है। एवं मूल प्रेरणा का विषय क्या यह पूर्व अध्याय का विषय था। उन सबका तात्पर्य यह था कि स्वकेन्द्रिता से प्रेरित पसंदादि से मुक्त होकर जीना ही दैवीमूल्यों को जीना है।

यद्यपि जीवन क्षुद्र अहं से प्रेरित न हो, किन्तु अज्ञानयुक्त व्यक्ति जीव, जगत, ईश्वर के बारे में नहीं जानता है और विपरीत धारणा से युक्त

श्रद्धात्रय विभाग योग

होने से उसीसे जीवन संचालित होता है। जब गुरु–शास्त्रादि के द्वारा इस विषय में समझ प्राप्त करते हैं, तब जीवन के परं लक्ष्य से परिचित होकर उसके अनुरूप जीवन होता है। गुरु की इच्छानुरूप जीना यह ही शास्त्रविधि अनुरूप जीना है। अब हमारे जीवन की बागडोर ज्ञानवान गुरु के हाथ में है। उसके अनुरूप जीने का औचित्य समझ में आ जाएं यही शास्त्रानुरूप जीना है। शास्त्र हमें इष्ट–अनिष्ट, कार्य–अकार्य के विषय में बताते हैं।

पूर्व अध्याय में शास्त्र के अनुरूप जीना बताया। यही शास्त्र की महिमा है कि सब को स्वस्थ देखकर ही उन्हें मार्ग प्रदर्शित करते है। और यही अपने अन्दर स्वस्थता प्राप्ति का तरीका है। आरम्भ में ज्ञानवान की सन्निधि को प्राप्त करके उनसे मूल्य और प्रेरणा प्राप्त करने चाहिए। जो शास्त्रानुरूप जीते है व श्रद्धा रखते है; वे धन्य होते है, उनका अवश्य कल्याण होता है। इसलिए अर्जुन के मन में इस श्रद्धा से सम्बन्धित प्रश्न उत्पन्न हुआ, उसी प्रश्न से इस अध्याय का आरम्भ होता है।

श्रद्धात्रय विभाग योग

अर्जुन पूछता हैं कि – ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्वमाहोरजस्तमः।। यद्यपि शास्त्र के अनुरूप जीवन ही कल्याणकारी है। यदि किसी को शास्त्रविषयक ज्ञान नहीं है, किन्तु कहीं न कहीं श्रद्धा से प्रेरित होकर वह कार्य करता है। उसकी निष्ठा अर्थात् मन की अवस्था सात्विक, राजसी, तामसी में से किस प्रकार होती है? यद्यपि श्रद्धा में ज्ञान का

'प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धा से युक्त होता है, जो जैसी श्रद्धा रखता है, वो वैसा ही होता है।'

अभाव होता है, किन्तु विश्वास की लाठी से चलते है। हर व्यक्ति दुनिया के प्रति श्रद्धा से ही जीता है। आरम्भ में मात्र सकारात्मक ढंग से मान्यता मात्र रखते है। भगवान शास्त्र के अनुरूप जीना बताते हैं; किन्तु हमें शास्त्र का ज्ञान ही नहीं। शास्त्र को समझने में जीवन लग जाता है, आरम्भ में ज्ञान भी नहीं किन्तु तथापि श्रद्ध ा है। अपनी श्रद्धा व मान्यता बगैर शास्त्रपरिचय के धारणामात्र है। कई लोगों को श्रद्धा है, किन्तु प्रामाणिक नहीं है। यदि श्रद्धा के उपरान्त विचार की यात्रा आरम्भ नहीं होती है तो वह धारणामात्र

श्रद्धात्रय विभाग योग

होती है। अर्जुन का प्रश्न कि जो शास्त्र जानता नहीं है अथवा शास्त्र जानते हुए भी उसका मूल्य नहीं है। बगैर ज्ञान के श्रद्धा है, तो उनकी निष्ठा, प्राथमिकता क्या है? कुछ पाठ, अनुष्ठानादि धर्माचरण भी करते है उनमें श्रद्धा है, किन्तु ज्ञान नहीं। श्रद्धा से ही जीवन का विकास होता है। शास्त्र के ज्ञान के अभाव में शास्त्र के प्रति श्रद्धा का क्या स्वरूप होता है?

उसके उत्तर में भगवान बताते हैं कि श्रद्धा सात्विक, राजसी और तामसी रूप तीन प्रकार की होती है। श्रद्धामयो हि पुरुषः – हर व्यक्ति सहजरूप से श्रद्धा से ही प्रेरित होता है। भगवान बताते हैं कि, यो यच्छ्रद्धः स एव सः। जो जैसी तथा जहां भी श्रद्धा रखता है, वह अन्ततः वैसा ही होता है। सब की श्रद्धा उनके संस्कार, समझ आदि के अनुरूप होती है। किसीकी भी श्रद्धा को पहचानने का यह सब से दृष्ट तरीका होता है कि उसका आदर, किसके प्रति है, तथा वह किससे प्रभावित होता है। जिसका आदर व प्रभाव होता है, उसका यजन करने को प्रेरित होता है। सात्विक व्यक्ति

श्रद्धात्रय विभाग योग

सात्विक प्रवृत्ति वाले देवता आदि का, राजसी व्यक्ति जो विविध ऐश्वर्य, वैभवादि से युक्त होते है, उसका तथा तामसी व्यक्ति भूत, प्रेतादिरूप तामसी शक्तियों की उपासना व यजन करता है। सात्विक श्रद्धा से युक्त की गति उर्ध्व, राजसी की गति संसार में तथा तामसी व्यक्ति का किसी भी प्रकार का विकास नहीं होते हुए यथास्थिति बनी रहती है। अतः सर्व प्रथम हमारे पूज्य व आराध्य कौन है, किसका साथ अधिक होता है, वही कल्याण वा पतन का मार्ग प्रशस्त करता है।

‘किसी के भी आराध्य से उनकी सात्विक, राजसी वा तामसी श्रद्धा का परिचय मिलता है।’

भगवान बहुत ही संवेदना से भोजनादि सन्दर्भ में भी सात्विकादि के लक्षण प्रदान करते है। सात्विक व्यक्ति में सहज ही आरोग्ध्यवर्धक, रसमय, मन को प्रसन्न करनेवाले भोजन के प्रति रुचि होती है। राजसी व्यक्ति का अति तिक्त, खारा, खट्टा भोजन के झुकाव होता है। उनके सभी स्वाद में अति की प्रधानता होती है, जिसमें स्वास्थ्यादि की उपेक्षा होकर, मन को भी खिन्न करनेवाला आदि रूप भोजन की प्रधानता होती है। ऐसा भोजन

श्रद्धात्रय विभाग योग

जो अन्तत: रोग पैदा करनेवाला होता है। तामसी व्यक्ति बासी, सड़ा, रसविहीन भोजन के प्रति रुचि रखता है।

किसी के द्वारा किया गया यज्ञ, पूजा आदि के पीछे की प्रेरणा से भी सात्विक आदि का भेद जान सकते हैं। यदि पूजा में सौभाग्य, ईश्वर के प्रति धन्यवाद व प्रेम अभिव्यक्ति की भावना है, तथा किसी भी प्रकार की फलाकांक्षा से प्रेरित नहीं है। समस्त विधि-विधान के पालन से युक्त होता है - ऐसा यज्ञ सात्विक होता है। जो यज्ञ फल की अपेक्षा से, दिखावे से प्रेरित होता है वह राजसी तथा जो अविधिपूर्वक, दक्षिणा-दान से रहित होता है चह तामसी यज्ञ होता है।

जो कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के लिए, जिसे देना सौभाग्य समझा जाता है, जहां देश, काल और पात्र का भी ध्यान रखते हुए दिया जाता है वह सात्विक दान है। जिसमें एहसान जताते हुए एवं धर्मध्वजित्व से युक्त होकर किया गया दान राजसी तथा तिरस्कारपूर्वक दिया गया दान तामसी होता है।

श्रद्धात्रय विभाग योग

तप भी शरीर, वाणी और मन के धरातल पर सात्विक, राजसी और तामसी होता है। देवता, द्विज, गुरु, विद्वान की सेवा-पूजा करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन करना यह शारीरिक तप है। सत्य, हितकर, अल्प तथा मधुर वाणी का प्रयोग वाणी के धरातल का तप है। तथा मन की प्रसन्नता, सौम्यता बनाए रखना मानस तप कहा जाता है। इसमें भी सात्विक आदि तीन तप होते है। जो फलाकांक्षा से रहित, परं श्रद्धा से युक्त किया हुआ तप सात्विक तप है। सत्कार, मान, पूजा के लिए, दम्भपूर्वक किया हुआ तप राजसी कहलाता है। मूढ़तापूर्वक हठ् से, मन, वाणी और शरीर की पीड़ा से युक्त किया हुआ तप तामसी तप है।

'वाकणी के धरासतल पर सत्य बोलना, अन्य के लिए हितकर, अल्प शब्दों में तथा मधुर बोलना तपस्या है।'

शास्त्र के ज्ञान से रहित हो, किन्तु श्रद्धा से युक्त, उसे मन में दोष की सम्भावना का ज्ञान है, क्योंकि अज्ञान का एहसास है। अतः भगवान से प्रायश्चित और क्षमा-प्रार्थना किया जाना चाहिए। उसके लिए भगवान एक मंत्र प्रदान करते हैं।

श्रद्धात्रय विभाग योग

वह मंत्र है – ओम् तत्सत्। किसी भी कर्म को करने के उपरान्त उसकी शुद्धि के लिए क्षम्यताम् की भावना से मंत्रोच्चार किया जाता है। अन्त में भगवान बताते हैं कि श्रद्धापूर्वक किये हुए कर्म से उर्ध्वगति होती है किन्तु अश्रद्धापूर्वक किया हुआ यज्ञ, दान व तप पतन की ओर ही ले जाते हैं।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

– २० –

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

श्रीराम के संग वनवास के समय भरत का समस्त सेना के साथ आगमन का समाचार सुनकर लक्ष्मणजी सशंकित हो उठें और युद्ध करने का मन बना बैठें। तथापि उनके द्वारा की गई प्रतिक्रिया निन्दनीय नहीं, किन्तु अभिनन्दनीय थी।

अन्तर्यामी श्रीराम अनन्य–अनुरागी लक्ष्मण के सद्भाव को भलीभांति जानते थे। उन्हें यह पता था कि लक्ष्मण की इस कठोर वाणी के पीछे उनकी प्रीति ही बोल रही है। उसमें अहंकार या मात्सर्य जैसी असद्वृत्ति का लेश भी नहीं है। आगे चलकर जैसा उन्होंने कहा कि इस कार्य के लिए लक्ष्मण को लज्जित होने की आवश्यकता

श्री लक्ष्मण चरित्र

नहीं है। उनकी वाणी नीति के सन्दर्भ में सर्वथा सुसंगत थी। राजसत्ता पाकर उन्मत्त होने वाले अनेक व्यक्तियों की नामावली इतिहास में भरी पड़ी है। यह बात और है कि श्री भरत उनसे सर्वथा भिन्न हैं।

इसके बाद प्रभु श्री भरत की सराहना में इतने मुखर हो गए कि उन्हें समय का भी भान न रहा। इस प्रसंग में भी श्री लक्ष्मण के निश्छल हृदय की झांकी प्राप्त होती है। कुछ क्षण पहले वे जिन भरत के वध के लिए प्रस्तुत हो गए थे, उनके आगमन पर उनका हृदय-स्नेह रस से इतना सराबोर हो गया कि प्रभु से भी पहले भरत से मिलने की उत्कट आकांक्षा उनके हृदय में जाग्रत हो गई। बड़ी कठिनाई से स्वयं को रोककर श्री भरत के शुभागमन की सूचना देते हैं। किसी व्यक्ति

श्री लक्ष्मण चरित्र

के प्रति उनका अनुराग अथवा विरोध अपनी व्यक्तिगत भावनाओं पर आधारित नहीं था।, किन्तु उनके केन्द्रीभूत आधार श्रीराम ही थे। सुमित्रा अम्बा के द्वारा दिया गया उपदेश उनके मन और प्राण में सहज भाव समाया हुआ था। मां ने अपने लाड़िले पुत्र को वन की ओर विदा करते हुए कहा था;

'पूजनीय प्रिय परम जहां ते।
मानिअ सबहिं राम के नाते।।'

इसीलिए जब वे भरत के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रस्तुत होते हैं तब अपने ही सगे भाई शत्रुघ्न का वध करने का संकल्प लेने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। किन्तु जब श्री भरत के प्रति उनकी धारणाओं में परिवर्तन हुआ तब श्री भरत से मिलन पश्चात् शत्रुघ्न से मिलते हुए उनका हृदय भावविह्वल हो गया। उस समय भरत के प्रति उनकी श्रद्धा-भावना इतनी बढ़ चुकी थी कि शत्रुघ्न को हृदय से लगाते हुए वे

श्री लक्ष्मण चरित्र

यह अनुभव नहीं करते कि वे अपने छोटे भाई से मिल रहे हैं। उन्हें तो यह भावना विभोर बना देती हैं कि भरत जैसे प्रभु के प्रेमास्पद के अनुचररूप में शत्रुघ्न अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं।

विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवन भयभंगव्यसनिनः ।

— २४ —

उत्तरकाशी
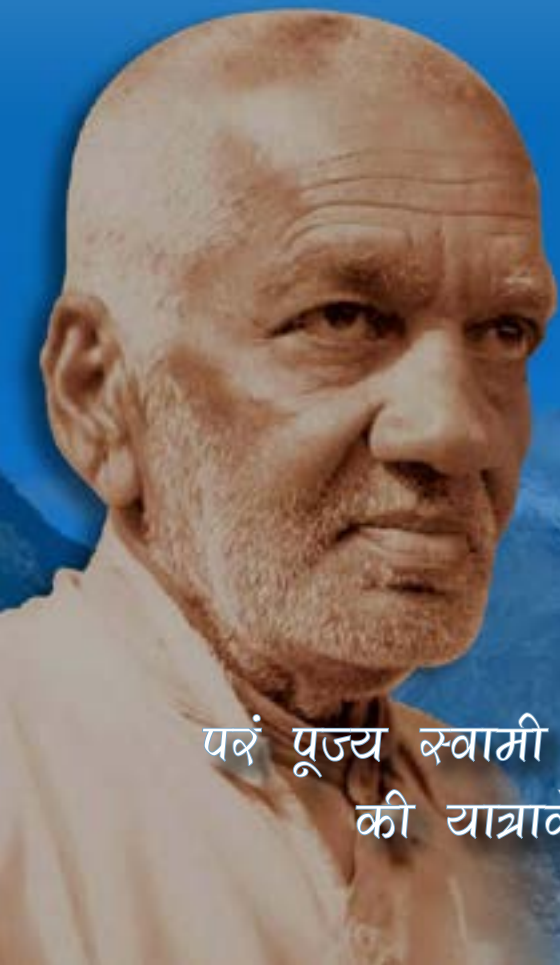
परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण
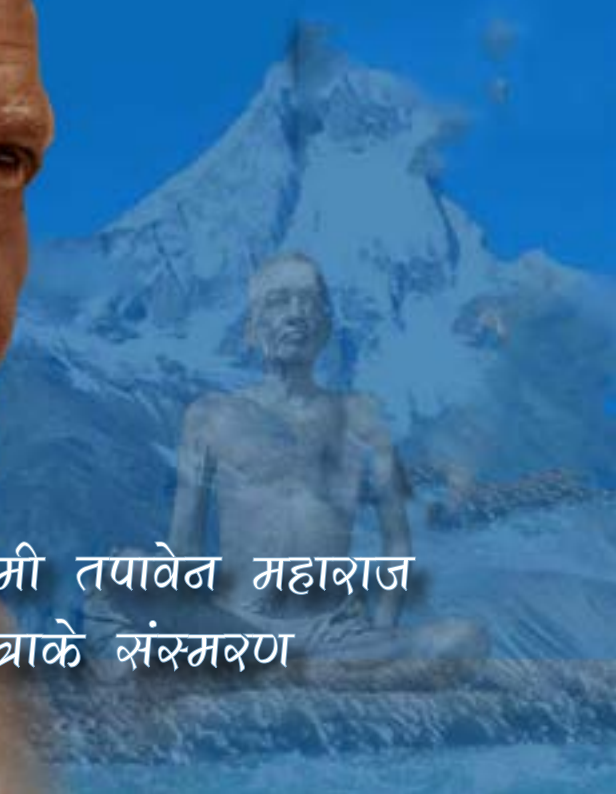
जीवन्मुक्त

वारणावत पर्वत की चढ़ाई को बड़ा पुण्य मानकर पुराणों ने प्रशंसा की है उस पर एक कदम आने बढ़ने से एक यज्ञ करने का फल मिल जाता है। ‘वाराहट’ नामक तराई के ग्राम से लगभग चार मील उपर की ओर चढ़ जाने पर हम वारणावतगिरि के उँचे शिखर पर पहुँच जाते है। सौम्यकाशी क्षेत्र के अन्तर्गत श्रीविश्वनाथ के मंदिर की स्थिति से अनुगृहीत एक सुन्दर ग्राम है ‘वाराहट’। कठिन होने पर भी कभी कभी तराई से उँची चढ़ाई के उस गिरिशिखर की ओर चढ़ जाना मेरे लिए एक

स्फूर्तिदायक तथा विनोदमय तपस्या कर्म था। एक या डेढ़ घंटे तक पर्वतारोहण करने में कुछ कष्ट तो होता है, फिर भी गिरिकूट में पहुँच जाने पर उतने ही पवित्र तथा सुन्दर दर्शन प्राप्त होते है।

गिरिशिखर से हिमगिरि की मंजुल और मनोहारी प्राकृतिक सुषमाको देखकर हम आनंदपूर्ण हो उठते है। दक्षिण में हिन्दुस्तान के मैदान तक विशालता में फैली हुई हरी–भरी पर्वत पंक्तियाँ, उत्तर में शिलामय शैलराजियाँ तथा उसके उपर धवल हिमकूट राशियां, बहुत ही शोभाभरी और हृदयाकर्षक दिखायी देती है। वहां हमें हिमालय का घनगंभीर भाव भी दृष्टिगोचर होता है। संक्षेप में सिर्फ इतना ही कह देता हूं कि वारणगिरि

के आरोहणरूपी तपस्या के अनुष्ठान में परमेश्वर प्रसाद के अदृष्टफल के अतिरिक्त प्रकृति सुषमा का पीयूष इच्छानुसार पीकर आनन्दोन्मत्त होने का इष्टफल यहीं प्राप्त होता है। उत्तरकाशी में पहली बार रहते हुए वहां के गोपालाश्रम के निवासी और 'गुरुवायूरप्पन' तथा रमण महर्षि के भक्त एक केरलीय सन्यासीवर्य से प्रेरणा पाकर मैंने 'श्रीगुरुपवनपुराधीशपंचकम्' नामक रचना वहां की थी। इसके साथ ही इस अध्याय खण्ड का उपसंहार कर रहा हूं।

पौराणिक गाथा

भस्मासुर

भस्मासुर अपने पूर्व जीवन में एक मूर्ख, बुद्धि हीन असुर था। वह अपने असफल जीवन से अत्यन्त दुःखी होकर भगवान शिव की आराधना में संलग्न हो गया। अत्यन्त परिश्रम के साथ उसने घोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिवजी प्रसन्न हुए और उसे वरदान मांगने को कहा।

मूर्खता से परिपूर्ण और असुर जाति का होने से उनमें कोई सृजनात्मक विचार तो आता नहीं था। उसने बहुत विचार किया कि महादेव से क्या वरदान मांगे जिससे हम अत्यन्त शक्तिशाली बन जाएं। खूब विचार करके उसने वर मांगने का निश्चय किया और उसने भगवान शंकर से कहा कि, 'मैं जिसके भी सिर पर हाथ रखूं, वह भस्म हो जाएं।' भगवान ने कहा, 'तथास्तु।'

भस्मासुर

मूर्ख व्यक्ति अपने विनाश को स्वयं ही आमंत्रित करता है। वैसे ही भस्मासुर ने वरदान मिलते ही सोचा कि, क्यों न इस वरदान की शक्ति को परख लिया जाए! यह सोच कर शिवजी के ही सिर पर हाथ रखने के लिए दौड़ा। वरदान के देनेवाले शिवजी, जिनकी भ्रूकुटि से इशारों से सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय होता है, उनका भस्मासूर क्या बिगाड़ सकता था? किन्तु शिवजी भी लीला करते हुए उनसे भागने लगे, वह भी स्वयं को शक्तिशाली समझकर शिवजी को भस्मीभूत करने के लिए उनके पीछे भागा। काफी समय तक यह लूकाछिपी चलती रही। अन्ततः शिवजी भगवान विष्णु के पास पहुंचें और अपनी समस्या बताई। तब भगवान विष्णु ने सुन्दर स्त्री–मोहिनी का रूप धारण करके भस्मासुर को आकर्षित किया। भस्मासुर शिवजी को भूलकर मोहिनी के मोहपाश में फंस गया। मोहिनी ने भस्मासुर को अपने साथ, अपनी ही तरह नृत्य करने के लिए प्रेरित किया। भस्मासुर तुरन्त मान गया। नृत्य करते समय भस्मासुर मोहिनी की ही तरह नृत्य करने लगा और उचित मौका देखकर मोहिनी रूप

भस्मासुर

में विराजमान भगवान विष्णु ने अपने ही सिर पर हाथ रख दिया।

शक्ति और काम के नशे में चूर भस्मासुर ने मोहिनी की नकल करते हुए अपने ही सिर पर हाथ रख दिया और अपने ही प्राप्त वरदान से स्वयं ही भस्म हो गया।

किसी दुष्ट व्यक्ति को शक्ति प्राप्त होने पर वह कृतघ्न हो जाता है। उसका प्रयोग करके अपने हितैषी का ही विनाश करके उनसे बडा होना चाहता है। मूर्खतापूर्वक शक्ति के मद में चूर होकर अपने ही विनाश का हेतु वह स्वयं बन जाता है। करुणानिधान भगवान ऐसे दुष्ट व्यक्ति को भी अवसर प्रदान करते हैं, जिससे कि वह अपने कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकें।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा
OUT SIDE FOOD
NOT ALLOWED

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा
वेदान्त पीयूष

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा
Girnaar
Darshan

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा
वेदान्त पीयूष

आश्रम समाचार

सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा
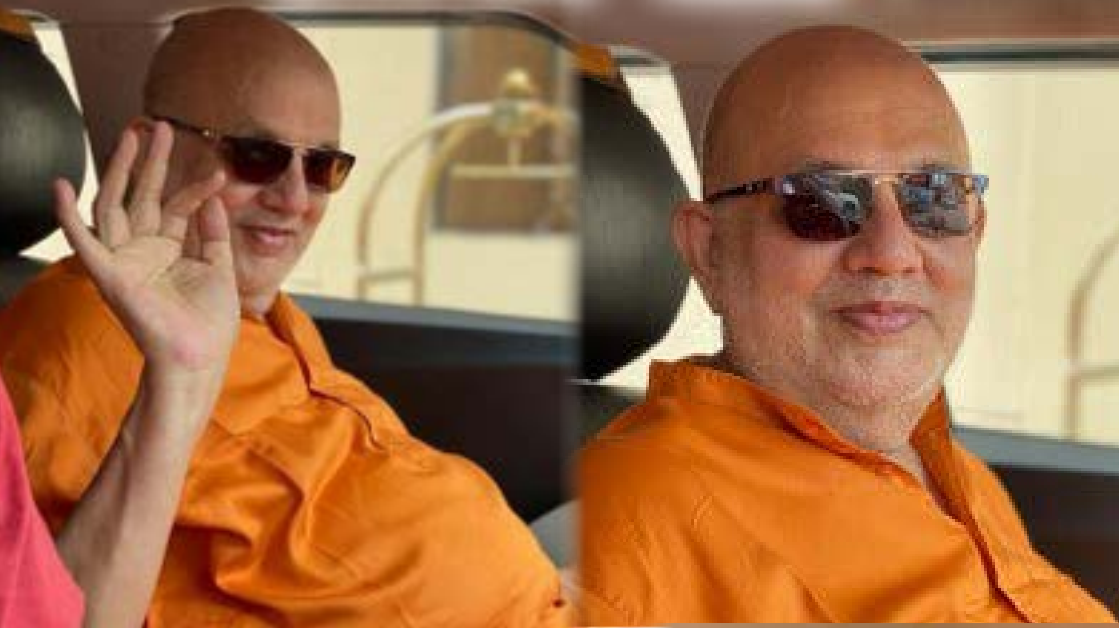
आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार

सोमनाथ यात्रा

आश्रम समाचार
सोमनाथ यात्रा

Jay Somnath

19-06-2022

Jay Somnath

19/06/2022

Jay Somnath

19/06/2022

द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा
वेदान्त पीयूष

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा
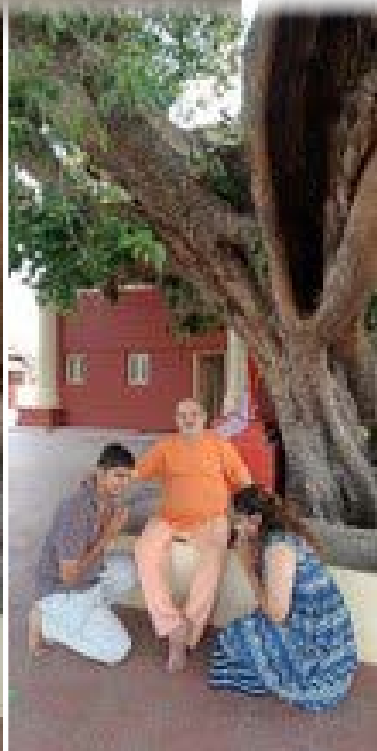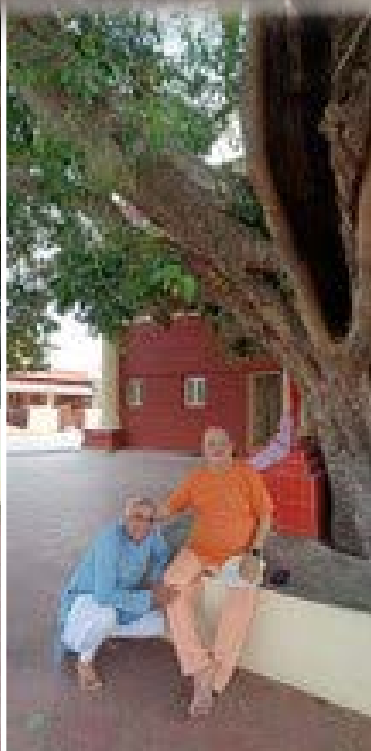
आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

आश्रम समाचार
द्वारका यात्रा

द्वारका यात्रा

Gods were happy - they bid us all a colorful Goodbye at Ahmedabad

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

25 से 31 जुलाई 2022

गीता ज्ञानयज्ञ

रामकृष्ण मिशन, खार, मुम्बई

पूज्य गुरुजी द्वारा

गीता अध्याय - १७

एवं पंचदशी अध्याय १०

---

20 अगस्त से 30 सितम्बर 2022

ओनलाईन ज्ञानयज्ञ

पूज्य गुरुजी द्वारा

साधना पंचकम्

INTERNET

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Upadesh Saar

~ Atma Bodha Pravachan

- Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

- Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

- Kathopanishad Pravachan

- Shiva Mahimna Pravachan

- Hanuman Chalisa

Internet

Audio Pravachans

~ Upadesh Saar

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

~ Vedanta Sandesh - July '22

~ Vedanta Piyush - June '22